

Chapter बीस

ब्रह्माण्ड रचना का विश्लेषण

इस अध्याय में प्लक्षद्वीप से प्रारम्भ करके विभिन्न द्वीपों तथा उनको घेरने वाले समुद्रों का वर्णन है। इसके अन्तर्गत लोकालोक नामक पर्वत की स्थिति और उसके आकार-प्रकार का भी वर्णन है। प्लक्षद्वीप विस्तार में जम्बूद्वीप से दुगुना है तथा लवण सागर से घिरा है। इस द्वीप का स्वामी इध्मजिह्व है जो महाराज प्रियव्रत के पुत्रों में से है। यह द्वीप सात विभागों में बँटा है और प्रत्येक में एक पर्वत तथा एक बड़ी नदी है।

दूसरा द्वीप शाल्मलिद्वीप कहलाता है। यह सुरा के समुद्र से घिरा है और ३,२००,००० मील चौड़ा अर्थात् प्लक्षद्वीप से दुगुना है। इस द्वीप का स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्रों में से एक यज्ञबाहु है। प्लक्षद्वीप के ही समान यह भी सात भागों में बँटा है, जिनमें से प्रत्येक में एक पर्वत और एक बड़ी नदी है। इस द्वीप के वासी श्रीभगवान् की पूजा चन्द्रात्मा के रूप में करते हैं।

तीसरा द्वीप घृत के सागर से घिरा है और वह भी सात भागों में विभाजित है। यह कुशद्वीप कहलाता है। इसका स्वामी महाराज प्रियव्रत का अन्य पुत्र हिरण्यरेता है। इसके वासी अग्नि रूप में श्रीभगवान् की पूजा करते हैं। इस द्वीप की चौड़ाई ६,४००,००० मील अर्थात् शाल्मलिद्वीप से दुगुनी है।

चौथा द्वीप क्रौंचद्वीप है, जो दुग्ध सागर से घिरा है। इसकी चौड़ाई १,२८,००,००० मील है और यह भी अन्यो की तरह सात भागों में विभाजित है। इसके प्रत्येक भाग में एक पर्वत तथा एक बड़ी नदी है। इस द्वीप का स्वामी महाराज प्रियव्रत का ही एक पुत्र घृतपृष्ठ है। इस द्वीप के वासी जल के रूप में श्रीभगवान् की पूजा करते हैं।

पाँचवाँ द्वीप शाकद्वीप है जो २,५६,००,००० मील चौड़ा और मट्टे के समुद्र से घिरा है। इसका स्वामी मेधातिथि नामक महाराज प्रियव्रत का पुत्र है। यह द्वीप भी सात भागों में विभाजित है, जिसके प्रत्येक भाग में एक पर्वत तथा एक बड़ी नदी है। इसके वासी वायु रूप में श्रीभगवान् की पूजा करते हैं।

छठा द्वीप पुष्करद्वीप है जो पिछले वाले द्वीप से दुगुना चौड़ा है और निर्मल जल के समुद्र से घिरा हुआ है। इसका स्वामी वीतिहोत्र है जो महाराज प्रियव्रत का ही पुत्र है। यह द्वीप मानसोत्तर पर्वत द्वारा दो भागों में विभाजित है। इसके वासी श्रीभगवान् के ही अन्य रूप स्वयंभू ही पूजा करते हैं। इस द्वीप से भी आगे दो और द्वीप हैं जिनमें से एक सदैव सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता है और दूसरा सदैव अंधकार से पूर्ण रहता है। इन दोनों द्वीपों के मध्य लोकालोक नामक पर्वत है जो ब्रह्माण्ड के सिरे से एक अरब मील दूर है। इस पर्वत पर भगवान् नारायण अपने ऐश्वर्य का विस्तार करते हुए निवास करते हैं। लोकालोक पर्वत से आगे का भाग अलोक वर्ष कहलाता है और इसके भी आगे मुक्ति से इच्छुक पुरुषों का निवासस्थान है।

सूर्य इस ब्रह्माण्ड के मध्य में, भूलोक तथा भुवलोक के बीचोंबीच अन्तरिक्ष में स्थित है। सूर्य तथा अण्डगोलक अर्थात् ब्रह्माण्ड गोलक के बीच की दूरी पच्चीस कोटि योजन (दो अरब मील) है। सूर्य को मार्तण्ड कहा जाता है, क्योंकि यह ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके आकाश को विभाजित करता है और हिरण्यगर्भ, जो महत् तत्त्व का शरीर है, से उत्पन्न होने के कारण यह हिरण्यगर्भ भी कहलाता है।

श्रीशुक उवाच

अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; अतः परम्—इसके पश्चात्; प्लक्ष-आदीनाम्—प्लक्षद्वीप तथा अन्य द्वीप; प्रमाण-लक्षण-संस्थानतः—आकार-प्रकार, लक्षण तथा स्थिति की दृष्टि से; वर्ष-विभागः—द्वीप का विभाजन; उपवर्ण्यते—वर्णन किया जा रहा है।

महर्षि शुकदेव गोस्वामी बोले—इसके पश्चात् मैं प्लक्षादि अन्य छः द्वीपों के आकार प्रकार, लक्षण तथा स्थिति का वर्णन करूँगा।

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्बूआख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन; प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम. ॥ २ ॥

शब्दार्थ

जम्बू-द्वीपः—जम्बू नामक द्वीप, जम्बूद्वीप; अयम्—यह; यावत्-प्रमाण-विस्तारः—इसके विस्तार के तुल्य परिमाण अर्थात् १,००,००० योजन (एक योजन आठ मील के तुल्य है); तावता—इतना; क्षार-उदधिना—खारे सागर द्वारा; परिवेष्टितः—घिरा हुआ; यथा—जिस प्रकार; मेरुः—सुमेरु पर्वत; जम्बू-आख्येन—जम्बू नामक द्वीप से; लवण-उदधिः—लवण-सागर; अपि—निश्चय ही; ततः—तत्पश्चात्; द्वि-गुण-विशालेन—दुगुना विस्तृत; प्लक्ष-आख्येन—प्लक्ष नामक द्वीप से; परिक्षिप्तः—घिरा हुआ; यथा—सदृश; परिखा—खाई; बाह्य—बाहरी; उपवनेन—उद्यानवत् वन के द्वारा; प्लक्षः—प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष; जम्बू-प्रमाणः—जम्बू वृक्ष जितना ऊँचा; द्वीप-आख्या-करः—द्वीप का नाम पड़ा; हिरण्मयः—अत्यन्त तेजमय; उत्थितः—ऊपर उठा हुआ; यत्र—जहाँ; अग्निः—अग्नि; उपास्ते—स्थित है; सप्त-जिह्वः—सात ज्वालाओं वाली; तस्य—उस द्वीप का; अधिपतिः—राजा अथवा स्वामी; प्रियव्रत-आत्मजः—राजा प्रियव्रत का पुत्र; इध्म-जिह्वः—इध्मजिह्व नामक; स्वम्—निजी; द्वीपम्—द्वीप; सप्त—सात; वर्षाणि—भूभागों में; विभज्य—विभाजित होकर; सप्त-वर्ष-नामभ्यः—जिन पर सातों भूभागों के नाम रखे गये; आत्मजेभ्यः—अपने पुत्रों को; आकलय्य—भेंट, अर्पण; स्वयम्—स्वतः; आत्म-योगेन—भगवान् की भक्ति द्वारा; उपरराम—समस्त भौतिक कार्यों से अवकाश ग्रहण कर लिया।

जिस प्रकार सुमेरु पर्वत चारों ओर से जम्बूद्वीप द्वारा घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी लवण के सागर से घिरा है। जम्बूद्वीप की चौड़ाई १,००,००० योजन (८,००,००० मील) है और लवण का सागर भी इतना ही चौड़ा है। जिस तरह कभी-कभी दुर्ग की खाई उपवन से घिरी रहती है उसी प्रकार जम्बूद्वीप को घेरने वाला लवण-सागर भी प्लक्षद्वीप से घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीप की चौड़ाई लवण के सागर से दुगुनी अर्थात् २,००,००० योजन (१६,००,००० मील) है। प्लक्षद्वीप में स्वर्ण के समान चमकीला एक वृक्ष है जो जम्बूद्वीप स्थित जम्बूवृक्ष के बराबर ऊँचा है। इसके मूल भाग में सात ज्वालाओं वाली अग्नि है। यह वृक्ष प्लक्ष का है, अतः इस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप पड़ा। यह द्वीप महाराज प्रियव्रत के एक पुत्र इध्मजिह्व द्वारा शासित था। उन्होंने सातों द्वीपों के नाम अपने सात पुत्रों के नामों पर रखे और उन्हें अपने पुत्रों को देकर, सक्रिय जीवन से अवकाश प्राप्त कर वे स्वयं श्रीभगवान् की सेवा में लीन रहने लगे।

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेमममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः; मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः अरुणा नृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्तभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः; यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गेर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते. ॥ ३-४ ॥

शब्दार्थ

शिवम्—शिव; यवसम्—यवस; सुभद्रम्—सुभद्र; शान्तम्—शान्त; क्षेमम्—क्षेम; अमृतम्—अमृत; अभयम्—अभय; इति—इस प्रकार; वर्षाणि—सातों पुत्रों के नामों के अनुसार सात वर्ष; तेषु—उनमें; गिरयः—पर्वत; नद्यः च—और नदियाँ; सप्त—सात; एव—निरसंदेह; अभिज्ञाताः—जाने जाते हैं; मणि-कूटः—मणिकूट; वज्र-कूटः—वज्रकूट; इन्द्र-सेनः—इन्द्रसेन; ज्योतिष्मान्—ज्योतिष्मान्; सुपर्णः—सुपर्ण; हिरण्य-छीवः—हिरण्यछीव; मेघ-मालः—मेघ-माल; इति—इस प्रकार; सेतु-शैलाः—वर्षों की सीमा बनाने वाली पर्वत श्रेणियाँ; अरुणा—अरुणा; नृम्णा—नृम्णा; आङ्गिरसी—आङ्गिरसी; सावित्री—सावित्री; सुप्त-भाता—सुप्तभाता; ऋतम्भरा—ऋतम्भरा; सत्यम्भरा—सत्यम्भरा; इति—इस प्रकार; महा-नद्यः—बड़ी बड़ी नदियाँ; यासाम्—जिनकी; जल-उपस्पर्शन—जल स्पर्श मात्र से; विधूत—धुल जाते हैं; रजः-तमसः—जिनके रजो तथा तमो गुण; हंस—हंस; पतङ्ग—पतंग; ऊर्ध्वायन—ऊर्ध्वायन; सत्याङ्ग—सत्याङ्ग; संज्ञाः—नाम वाले; चत्वारः—चारों; वर्णाः—जातियाँ; सहस्र-आयुषः—एक हजार वर्षों तक जीवित रहकर; विबुध-उपम—देवताओं के समान; सन्दर्शन—अत्यन्त सुन्दर रूप होने में; प्रजननाः—तथा संतति उत्पन्न करने में; स्वर्ग-द्वारम्—स्वर्गलोक जाने का द्वार; त्रय्या विद्यया—वैदिक नियमों के अनुसार अनुष्ठान करके; भगवन्तम्—श्रीभगवान्; त्रयी-मयम्—वेदों में स्थापित; सूर्यम् आत्मानम्—सूर्यदेव रूपी परमात्मा को; यजन्ते—पूजा करते हैं।

इन सात वर्षों के नाम उन सातों पुत्रों के अनुसार क्रमशः शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय पड़े। इन सात वर्षों में सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं। पर्वतों के नाम हैं—मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यछीव तथा मेघमाल और नदियों के नाम हैं—अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा। इन नदियों के स्पर्श करने या स्नान करने से भौतिक मल तुरन्त दूर हो जाते और प्लक्षद्वीप में रहने वाली हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन तथा सत्याङ्ग नामक चार जातियाँ अपने को इसी प्रकार पवित्र करती हैं। इस द्वीप के वासी एक हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं। वे देवताओं के समान सुन्दर हैं और उनकी सन्तानें भी उन्हीं के अनुरूप हैं। वे वेदों में वर्णित अनुष्ठानों को पूरा करके तथा श्रीभगवान् के प्रतिनिधि स्वरूप सूर्यदेव की उपासना करके सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं, जो स्वर्गलोक ही है।

तात्पर्य : सामान्य अनुभव के अनुसार मूलतः तीन देवता हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, किन्तु अल्पज्ञानी भगवान् विष्णु को ब्रह्मा या शिव से श्रेष्ठतर नहीं मानते पर यह निष्कर्ष अप्रामाणिक है। वेदों में कहा गया है कि *इष्टापूर्तं बहुधा जायमानं विश्वं बिभर्ति भुवनस्य नाभिः तदेवाग्निस्तद् वायुस्तत् सूर्यस्तद् उ चन्द्रमाः अग्निः सर्वदैवतः।* इसका अर्थ यह हुआ कि जो परमात्मा वैदिक अनुष्ठानों (इष्टपूर्त) को स्वीकारता और उनकी फलों को भोगता है, सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करता है, समस्त जीवात्माओं की आवश्यकताएँ पूरी करता है (*एको बहूनां यो विदधाति कामान्*) और समस्त सृष्टि का केन्द्रबिन्दु है, वह भगवान् विष्णु हैं। भगवान् विष्णु अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र के रूप में विस्तारित होते हैं, जो उनके अंश रूप हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने *श्रीमद्भगवद्गीता* (९.२३) में कहा है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

“जो सकाम भक्त श्रद्धासहित अन्य देवताओं की उपासना करते हैं, वे भी मेरी ही उपासना करते हैं, परन्तु उनकी आराधना विधिपूर्वक नहीं होती।” कहने का तात्पर्य यह कि जो देवताओं एवं श्रीभगवान् के सम्बन्ध को समझे बिना देवताओं की उपासना करता है उसकी आराधना विधिपूर्वक नहीं होती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी *भगवद्गीता* (९.२४) में कहा है—*अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च*—“एकमात्र मैं ही सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता हूँ।”

यह तर्क दिया जा सकता है कि देवता भी विष्णु के समान महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके नाम विष्णु के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं। किन्तु यह निष्कर्ष सही नहीं है, क्योंकि वैदिक ग्रन्थों में इसका प्रतिवाद करते हुए कहा गया है—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्रादयश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत । नारायणाद् ब्रह्मा, नारायणाद्द्रो जायते, नारायणात् प्रजापतिः जायते, नारायणादिन्द्रो जायते, नारायणादष्टौ वसवो जायन्ते, नारायणादेकादश रुद्रा जायन्ते ।

“चन्द्रमा देवता नारायण के मन से और सूर्य देवता उनके नेत्रों से उत्पन्न हुए। श्रवण तथा प्राणवायु के नियामक देवता नारायण से उत्पन्न हुए और अग्नि देवता उनके मुख से निकले। प्रजापति भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र, आठों वसु, भगवान् शिव के ग्यारहों विस्तार (रुद्र) तथा बारहों आदित्य भी नारायण से उत्पन्न हुए।” स्मृति में भी कहा गया है—

ब्रह्मा शम्भुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः ।

एवमाद्यास्तथैवान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा ॥

जगत्कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।

वितेजश्च ते सर्वे पंचत्वमुपयान्ति ते ॥

“ब्रह्मा, शम्भु, सूर्य तथा इन्द्र सभी श्रीभगवान् की शक्ति के फल हैं। जिन अन्य देवताओं के नाम नहीं लिये गये, वे भी ऐसे हैं। इस जगत के विनाश होने पर नारायण की शक्ति के ये विभिन्न अंश नारायण में ही विलीन हो जाएँगे, अर्थात् ये सभी देवता मर जाएँगे। उनकी प्राणशक्ति वापस ले ली जाएगी और वे नारायण में विलीन हो जाएँगे।”

अतः यह निष्कर्ष निकला कि भगवान् विष्णु ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, ब्रह्मा या शिव नहीं। जिस प्रकार कभी-कभी एक राजकीय कर्मचारी को ही सरकार मान लिया जाता है, यद्यपि वह किसी एक विभाग के संचालक रूप में ही कार्य करता है, उसी प्रकार सारे देवता भगवान् विष्णु से न्यायवादी शक्ति प्राप्त करके उनके लिए कार्य करते हैं, किन्तु वे उनके समान शक्तिमान नहीं होते। सभी देवताओं को विष्णु के आदेशों का पालन करना होता है। इसीलिए कहा गया है कि *एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य—श्रीकृष्ण* अथवा विष्णु ही एकमात्र स्वामी हैं, शेष सभी उनकी आज्ञा का पालन करने वाले आज्ञाकारी सेवक हैं। भगवान् विष्णु तथा अन्य भक्तों के इस अन्तर का उल्लेख *भगवद्गीता* (९.२५) में भी हुआ है—*यान्ति देवव्रता देवान् ...यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्—*“देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और कृष्ण और विष्णु के भक्त वैकुण्ठ लोक को ही प्राप्त होते हैं।” ये स्मृति-वचन हैं। अतः यह मत कि विष्णु तथा अन्य देवताओं को एकसमान मानना शास्त्रों के विरुद्ध है। देवता सर्वोच्च नहीं हैं। उनकी श्रेष्ठता भगवान् नारायण (श्रीविष्णु या श्रीकृष्ण) की कृपा पर निर्भर है।

प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ।

अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

प्रत्नस्य—प्राचीनतम पुरुष का; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; रूपम्—रूप; यत्—जो; सत्यस्य—परम सत्य का; ऋतस्य—धर्म का; ब्रह्मणः—परब्रह्म का; अमृतस्य—शुभ फल का; च—तथा; मृत्योः—मृत्यु (अशुभ फल) का; च—तथा; सूर्यम्—सूर्य देवता; आत्मानम्—सभी आत्माओं के मूल परमात्मा की; ईमहि—शरण की याचना करते हैं; इति—इस प्रकार।

[इस मंत्र के द्वारा प्लक्षद्वीप के वासी परब्रह्म की उपासना करते हैं।] हम सूर्य देवता की शरण ग्रहण करें जो परम प्रकाशित, पुराणपुरुष श्रीभगवान् के प्रतिबिम्ब हैं। विष्णु ही एकमात्र आराध्य हैं। वही वेद हैं, वही धर्म हैं और वही शुभाशुभ फलों के स्रोत हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु मृत्यु के भी परमेश्वर हैं, जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है (*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*)। शुभ तथा अशुभ इन दोनों प्रकार के कार्यों के नियन्ता भगवान् विष्णु हैं। ऐसा माना जाता है कि शुभ कार्य विष्णु के सम्मुख होते हैं और अशुभ कार्य उनकी पीठ के पीछे। शुभ तथा अशुभ कार्य सारे विश्व में एकसाथ पाये जाते हैं और भगवान् विष्णु इन दोनों के नियन्ता हैं। इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील मध्वाचार्य का कथन है—

सूर्यसोमाग्निवारीशविधातृषु यथाक्रमम् ।

प्लक्षादिद्वीपसंस्थासु स्थितं हरिमुपासते ॥

सम्पूर्ण सृष्टि में अनेक भूभाग, खेत, पहाड़ तथा सागर पाये जाते हैं और सर्वत्र ही श्रीभगवान् विभिन्न नामों से पूजे जाते हैं ।

श्रील वीरराघव आचार्य ने श्रीमद्भागवत के इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—विराट जगत के मूल कारण अवश्य ही पुरातन पुरुष हैं और वे भौतिक रूपान्तर से परे होने चाहिए । वे ही समस्त शुभ कार्यों के भोक्ता हैं और इस बद्ध जीवन तथा मुक्ति के कारण भी वे ही हैं । सूर्यदेव की गणना परम शक्तिशाली जीव अथवा जीवात्मा के रूप में की गई है जो उनके शरीर के एक अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं । हम स्वभावतः शक्तिशाली जीवों के वश में हैं, अतः हम विभिन्न देवताओं की उपासना ऐसे जीवों के रूप में कर सकते हैं, जो श्रीभगवान् के शक्तिशाली प्रतिनिधि हैं । यद्यपि इस मंत्र में सूर्यदेवता की उपासना के लिए कहा गया है, किन्तु उनकी उपासना श्रीभगवान् के रूप में नहीं वरन् उनके शक्तिशाली प्रतिनिधि रूप में की जाती है ।

कठ उपनिषद् (१.३.१) में कहा गया है—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके

गुहां प्रविष्टौ परमे परार्थे ।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति

पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥

“हे नाचिकेता! सूक्ष्म जीवात्मा तथा परमात्मा के रूप में विष्णु के ये दोनों अंश इस शरीर की हृदय-गुहा में स्थित हैं । इस गुहा में प्रवेश करके जीवात्मा प्राणवायु पर आधारित रह कर कर्मों के फल का भोग करता है और परमात्मा साक्षी बनकर उसे भोग करने देता है । ब्रह्म-ज्ञानियों तथा वैदिक नियमों का पालन करने वाले गृहस्थों का कहना है कि इन दोनों में वैसा ही अन्तर है जैसाकि सूर्य तथा उसकी छाया में ।”

श्वेताश्वतर उपनिषद् (६.१६) में कहा गया है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः

ज्ञः कालाकारो गुणी सर्वविद् यः ।

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः

संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥

“इस जगत का सृष्टिकर्ता परमात्मा अपनी सृष्टि का कोना-कोना पहचानता है। यद्यपि वह इसका कारण है, किन्तु उसके प्रकट होने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह सर्वज्ञाता है। वह परमात्मा, समस्त दिव्य गुणों का स्वामी तथा इस जगत के बन्धन और मोक्ष का भी स्वामी है।”

इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् (२.८) में कहा गया है—

भीषास्माद्वातः पवते

भीषोदेति सूर्यः ।

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च

मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥

“परब्रह्म के भय से वायु बहती है, सूर्य उदय-अस्त होता है और अग्नि प्रज्वलित होती है। उसी के भय से मृत्यु तथा स्वर्ग के राजा इन्द्र अपना-अपना कार्य करते हैं।”

जैसाकि इस अध्याय में वर्णित है, प्लक्षद्वीप इत्यादि पाँच द्वीपों के वासी क्रमशः सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु तथा ब्रह्मा की उपासना इत्यादि करते हैं। यद्यपि वे इन पाँचों देवताओं की उपासना करते हैं, किन्तु वास्तव में वे समस्त जीवों के परमात्मा श्रीभगवान् विष्णु को ही उपासते हैं, जैसाकि इस श्लोक के इन शब्दों से प्रकट है—*प्रत्नस्य विष्णो रूपम्*। विष्णु ब्रह्म हैं, अमृत हैं, मृत्यु हैं—वे परब्रह्म हैं और शुभ तथा अशुभ सभी वस्तुओं के मूल हैं। वे सबों के हृदय में स्थित हैं, जिनमें देवता भी सम्मिलित हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—कामनाओं ने जिनके ज्ञान को हर लिया है, वे ही अन्य देवताओं की शरण ग्रहण करते हैं। जो महत्त्वाकांक्षाओं के कारण अंधे होते हैं, उन्हें अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए देवताओं की उपासना की सलाह दी जाती है, किन्तु देवता उनकी मनोकामनाओं को वास्तव में पूरा नहीं कर पाते। सभी देवता उतना की कर पाते हैं जितने की भगवान् विष्णु उन्हें आज्ञा देते हैं। जो अत्यधिक लालची होते हैं, वे विष्णु को न पूजकर अनेक देवताओं की पूजा करते हैं, किन्तु वास्तव में वे भगवान् विष्णु की ही उपासना करते हैं,

क्योंकि वे ही समस्त देवताओं के परमात्मा हैं।

प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते. ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

प्लक्ष-आदिषु—प्लक्ष आदि द्वीपों में; पञ्चसु—पाँच; पुरुषाणाम्—निवासियों का; आयुः—दीर्घ जीवनकाल; इन्द्रियम्—इन्द्रियों की पुष्टता; ओजः—शारीरिक बल; सहः—मनोबल; बलम्—शारीरिक शक्ति; बुद्धिः—बुद्धि; विक्रमः—शौर्य; इति—इस प्रकार; च—भी; सर्वेषाम्—सबों का; औत्पत्तिकी—अंतःभूत; सिद्धिः—सिद्धि; अविशेषेण—बिना किसी भेदभाव के; वर्तते—विद्यमान है।

हे राजन्, प्लक्ष आदि पाँच द्वीपों में सभी वासियों में जन्म से ही आयु, मनोबल, इन्द्रिय बल, शारीरिक बल, बुद्धि और शौर्य (पराक्रम) समान रूप में प्रकट रहते हैं।

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्गे. ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

प्लक्षः—प्लक्षद्वीप; स्व-समानेन—विस्तार में समान; इक्षु-रस—गन्ने के रस के; उदेन—समुद्र से; आवृतः—घिरा हुआ; यथा—जिस प्रकार; तथा—उसी प्रकार; द्वीपः—अन्य द्वीप; अपि—भी; शाल्मलः—शाल्मल नामक; द्वि-गुण-विशालः—दुगुने विस्तार का; समानेन—विस्तार में समान; सुरा-उदेन—मदिरा के सागर से; आवृतः—घिरा हुआ; परिवृङ्गे—विद्यमान है।

प्लक्षद्वीप अपने ही समान चौड़ाई वाले इक्षुरस के समुद्र से घिरा हुआ है। इसी प्रकार उसके आगे उससे दुगुने परिमाण वाला शाल्मलीद्वीप है (४,००,००० योजन अथवा ३२,००,००० मील चौड़ा) जो उतने ही चौड़ाईवाले जल समूह अर्थात् सुरासागर से घिरा हुआ है।

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहृतये उपलक्ष्यते. ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; ह वै—निश्चय ही; शाल्मली—शाल्मली वृक्ष; प्लक्ष-आयामा—प्लक्ष वृक्ष जितना बड़ा (१०० योजन चौड़ा तथा ११०० योजन ऊँचा); यस्याम्—जिसमें; वाव किल—निस्सन्देह; निलयम्—निवासस्थान; आहुः—ऐसा कहते हैं; भगवतः—सर्वशक्तिमान का; छन्दः-स्तुतः—जो वैदिक स्तुतियों द्वारा ईश्वर की उपासना करता है; पतत्रि-राजस्य—भगवान् विष्णु का वाहन पक्षिराज गरुड़; सा—वह वृक्ष; द्वीप-हृतये—द्वीप के नाम हेतु; उपलक्ष्यते—प्रसिद्ध है।

शाल्मलीद्वीप में शाल्मली का एक वृक्ष है, जिससे इस द्वीप का यह नाम पड़ा। यह प्लक्ष वृक्ष के बराबर चौड़ा और ऊँचा है, अर्थात् १०० योजन ८०० मील चौड़ा तथा ११०० योजन ८८०० मील ऊँचा है। विद्वानों का कथन है कि यह विशाल वृक्ष पक्षियों के राजा तथा विष्णु के

वाहन गरुड़ का निवासस्थान है। यहाँ गरुड़ भगवान् विष्णु की वैदिक स्तुति करता है।

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं
सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति. ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्-द्वीप-अधिपतिः—उस द्वीप का स्वामी; प्रियव्रत-आत्मजः—महाराज प्रियव्रत का पुत्र; यज्ञ-बाहुः—यज्ञबाहु है; स्व-
सुतेभ्यः—अपने पुत्रों के; सप्तभ्यः—सातों; तत्-नामानि—जिनके नाम उनके नामों के अनुसार; सप्त-वर्षाणि—सातों वर्षों
(भूखण्डों) को; व्यभजत्—विभाजित; सुरोचनम्—सुरोचन; सौमनस्यम्—सौमनस्य; रमणकम्—रमणक; देव-वर्षम्—
देववर्ष; पारिभद्रम्—पारिभद्र; आप्यायनम्—आप्यायन; अविज्ञातम्—अविज्ञात; इति—इस प्रकार।

शाल्मलीद्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु ने इस द्वीप को सात भागों में
विभाजित करके उन्हें अपने पुत्रों को दे दिया। इन विभागों के नाम उनके पुत्रों के नामों पर हैं—
सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन तथा अविज्ञात।

तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति;
अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति. ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तेषु—इन भागों में; वर्ष-अद्रयः—पर्वत; नद्यः च—नदियाँ भी; सप्त एव—सात; अभिज्ञाताः—जाना गया; स्वरसः—स्वरस;
शत-शृङ्गः—शतशृंग; वाम-देवः—वामदेव; कुन्दः—कुन्द; मुकुन्दः—मुकुन्द; पुष्प-वर्षः—पुष्पवर्ष; सहस्र-श्रुतिः—
सहस्रश्रुति; इति—इस प्रकार; अनुमतिः—अनुमति; सिनीवाली—सिनीवाली; सरस्वती—सरस्वती; कुहू—कुहू; रजनी—
रजनी; नन्दा—नन्दा; राका—राका; इति—इस प्रकार।

इन सातों विभागों में सात पर्वत हैं, जिनके नाम स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द,
पुष्पवर्ष तथा सहस्रश्रुति हैं। उनमें सात नदियाँ भी हैं जिनके नाम अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती,
कुहू, रजनी, नन्दा तथा राका हैं। ये आज भी विद्यमान हैं।

तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते. ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तत्-वर्ष-पुरुषाः—उन वर्षों के निवासी; श्रुतधर—श्रुतधर; वीर्यधर—वीर्यधर; वसुन्धर—वसुन्धर; इषन्धर—इषन्धर; संज्ञाः—
के नाम से विख्यात; भगवन्तम्—श्रीभगवान्; वेद-मयम्—वैदिक ज्ञान से सुपरिचित; सोमम् आत्मानम्—सोम नामक जीवात्मा
द्वारा प्रदर्शित; वेदेन—वैदिक नियमों के पालन से; यजन्ते—उपासना करते हैं।

इन द्वीपों के वासी श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर तथा इषन्धर नामों से विख्यात हैं और वे
वर्णाश्रम धर्म का कठोरता से पालन करते हुए श्रीभगवान् के सोम नामक अंश की, जो साक्षात्
चन्द्रदेव हैं, उपासना करते हैं।

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः ।

प्रजानां सर्वासं राजान्धः सोमो न आस्त्विति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

स्व-गोभिः—अपनी प्रकाशमय किरणों के विस्तार से; पितृ-देवेभ्यः—अपने पितरों तथा देवता-गणों को; विभजन्—विभाजित करके; कृष्ण-शुक्लयोः—कृष्ण तथा शुक्ल पक्षों में; प्रजानाम्—निवासियों का; सर्वासाम्—सभी; राजा—राजा; अन्धः—अन्न; सोमः—चन्द्रदेव; नः—हम पर; आस्तु—अनुकूल रहे; इति—इस प्रकार ।

[शाल्मलीद्वीप के वासी चन्द्रदेवता की आराधना निम्नलिखित शब्दों से करते हैं ।] पितरों तथा देवताओं को अन्न देने के उद्देश्य से चन्द्रदेव ने अपने ही किरणों से मास को शुक्ल तथा कृष्ण नामक दो पक्षों में विभाजित किया है। चन्द्र देवता काल का विभाजन करने वाला और ब्रह्माण्ड के वासियों का अधिपति है। अतः हम यह प्रार्थना करते हैं कि वह हमारा अधिपति तथा पथप्रदर्शक बना रहे। हम उसे सादर नमस्कार करते हैं।

एवं सुरोदाद्बहिस्तद्विद्वगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सुरोदात्—सुरासागर से; बहिः—बाहर; तत्-द्वि-गुणः—उसका दुगुना; समानेन—चौड़ाई में समान; आवृतः—घिरा हुआ; घृत-उदेन—घृत सागर के द्वारा; यथा-पूर्वः—शाल्मलीद्वीप के ही समान; कुश-द्वीप—कुशद्वीप; यस्मिन्—जिसमें; कुश-स्तम्बः—कुश नामक घास; देव-कृतः—श्रीभगवान् की परमेच्छा से उत्पन्न; तत्-द्वीप-आख्या-करः—द्वीप का नामकरण करके; ज्वलनः—अग्नि; इव—सदृश; अपरः—अन्य; स्व-शष्प-रोचिषा—अंकुरित दूब के ऐश्वर्य से; दिशः—समस्त दिशाएँ; विराजयति—प्रकाशित करता है।

सुरासागर के बाहर कुशद्वीप नामक एक अन्य द्वीप है जो सुरासागर से दूना अर्थात् ८,००,००० योजन (६४,००,००० मील) चौड़ा है। जिस प्रकार शाल्मली द्वीप सुरासागर से घिरा है उसी प्रकार कुशद्वीप अपने तुल्य विस्तार वाले घृतसागर से घिरा है। इस द्वीप में कुशघास के पौधे पाये जाते हैं, इसीलिए द्वीप का यह नाम पड़ा है। यह कुशघास परमेश्वर की इच्छा के अनुसार देवताओं द्वारा उत्पन्न की गई थी और द्वितीय अग्नि जैसी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु इसकी ज्वालाएँ अत्यन्त मृदु तथा मनोहर हैं। इसके नव-अंकुर (शिखर) समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में दिये गये विवरण से चन्द्रमा पर ज्वालाओं की प्रकृति के सम्बन्ध में बुद्धिपरक अनुमान लगाया जा सकता है। सूर्य के समान चन्द्रमा को भी ज्वालाओं से पूर्ण होना चाहिए,

क्योंकि ज्वालाओं के बिना प्रकाश सम्भव नहीं। किन्तु चन्द्रमा की ज्वालाएं सूर्य से भिन्न अतएव मृदु एवं मनोहारी होनी चाहिए। ऐसा हमारा मानना है। आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रमा धूल से भरा हुआ है जो श्रीमद्भागवत के श्लोकों में मान्य नहीं है। इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कहना है— सुशष्पाणि सुकोमलशिखास्तेषां रोचिषा—कुश घास समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती है, किन्तु इसकी ज्वालाएँ अत्यन्त मृदु एवं मनोहारी हैं। इससे चन्द्रमा में स्थित ज्वालाओं के सम्बन्ध में कुछ अनुमान प्राप्त होता है।

तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन्हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः. ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तत्-द्वीप-पतिः—उस द्वीप का स्वामी; प्रैयव्रतः—महाराज प्रियव्रत का पुत्र; राजन्—हे राजा; हिरण्यरेता—हिरण्यरेता; नाम—नामक; स्वम्—उसका अपना; द्वीपम्—द्वीप; सप्तभ्यः—सातों; स्व-पुत्रेभ्यः—अपने पुत्रों को; यथा-भागम्—हिस्से के अनुसार; विभज्य—विभाजित करके; स्वयम्—स्वयं; तपः आतिष्ठत—तप में लग गया; वसु—वसु को; वसुदान—वसुदान; दृरुचि—दृरुचि; नाभि-गुप्त—नाभिगुप्त; स्तुत्य-व्रत—स्तुत्यव्रत; विविक्त—विविक्त; वाम-देव—वामदेव; नामभ्यः—नामक।

हे राजन्, महाराज प्रियव्रत के दूसरे पुत्र हिरण्यरेता इस द्वीप के राजा थे। उन्होंने इसके सात विभाग किये और उसके एक-एक विभाग को उत्तराधिकारी के अनुसार अपने सातों पुत्रों वसु, वसुदान, दृरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव को दे दिये। राजा स्वयं गृहस्थ जीवन से विरक्त होकर तप करने लगे।

तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुःशृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति. ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन पुत्रों के; वर्षेषु—भूभागों (वर्षों) में; सीमा-गिरयः—सीमान्त पर्वत; नद्यः च—और नदियाँ भी; अभिज्ञाताः—ज्ञात; सप्त—सात; सप्त—सात; एव—निश्चय ही; चक्रः—चक्र; चतुः-शृङ्गः—चतुःशृंग; कपिलः—कपिल; चित्र-कूटः—चित्रकूट; देवानीकः—देवानीक; ऊर्ध्व-रोमा—ऊर्ध्वरोमा; द्रविणः—द्रविण; इति—इस प्रकार; रस-कुल्या—रसकुल्या; मधु-कुल्या—मधुकुल्या; मित्र-विन्दा—मित्रविन्दा; श्रुत-विन्दा—श्रुतविन्दा; देव-गर्भा—देवगर्भा; घृत-च्युता—घृतच्युता; मन्त्र-माला—मन्त्रमाला; इति—इस प्रकार।

इन सातों द्वीपों में सात सीमान्त पर्वत हैं, जिनके नाम चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा तथा द्रविण हैं। इसी प्रकार सात नदियाँ हैं जिनके नाम रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्त्रमाला हैं।

यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं
कर्मकौशलेन यजन्ते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यासाम्—जिनके; पयोभिः—जल से; कुश-द्वीप-ओकसः—कुशद्वीप के वासी; कुशल—कुशल; कोविद—कोविद;
अभियुक्त—अभियुक्त; कुलक—कुलक; संज्ञाः—नामक; भगवन्तम्—श्रीभगवान् को; जातवेद—अग्नि देवता; स-
रूपिणम्—स्वरूप को प्रकट करके; कर्म-कौशलेन—अनुष्ठानों में कुशलता के कारण; यजन्ते—आराधना करते हैं।

कुशद्वीप के वासी कुशल, कोविद, अभियुक्त तथा कुलक नामों से विख्यात हैं। वे क्रमशः
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के सदृश हैं। उक्त नदियों के जल में स्नान करके ये सभी वासी
पवित्र होते हैं। वे वैदिक शास्त्रों के अनुसार अनुष्ठानों को सम्पन्न करने में कुशल हैं। इस प्रकार
वे अग्नि देवता के रूप में भगवान् की उपासना करते हैं।

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ।

देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

परस्य—परमेश्वर की; ब्रह्मणः—ब्रह्म का; साक्षात्—प्रकट रूप में, साक्षात्; जात-वेदः—हे अग्निदेव; असि—आप हैं;
हव्यवाट्—अन्न तथा घृत की आहुति के वाहक; देवानाम्—समस्त देवताओं के; पुरुष-अङ्गानाम्—जो परम पुरुष के अंग हैं;
यज्ञेन—यज्ञों के द्वारा; पुरुषम्—परम पुरुष को; यज—यज्ञ करो; इति—इस प्रकार।

[यह वह मंत्र है, जिसके द्वारा कुशद्वीप के वासी अग्निदेव की पूजा करते हैं।] हे अग्निदेव,
आप श्रीभगवान् हरि के अंश रूप हैं और उन तक समस्त हवियों को पहुँचाते हैं। अतः हम
आपसे प्रार्थना करते कि हम देवताओं को जो भी यज्ञ-सामग्री अर्पण कर रहे हैं, उसे आप पूर्ण
पुरुषोत्तम भगवान् को अर्पित करें, क्योंकि परमेश्वर ही असली भोक्ता हैं।

तात्पर्य : समस्त देवता श्रीभगवान् के सेवक हैं, जो उनकी सेवा में रत रहते हैं। अतः यदि कोई
व्यक्ति देवताओं की उपासना करता है, तो वे देवता परमेश्वर के सेवकों की भाँति उन तक समस्त
हवियों को पहुँचाते हैं, जिस प्रकार कर-संग्राहक नागरिकों से कर वसूल कर सरकारी कोष में पहुँचाते
हैं। देवता इन हवियों को स्वीकार नहीं कर सकते; वे उन्हें श्रीभगवान् तक पहुँचाने का कार्य करते हैं।
जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है—*यस्य प्रसादाद् भगवत्-प्रसादः*—चूँकि गुरु
श्रीभगवान् का प्रतिनिधि होता है, अतः उसे जो भी अर्पित किया जाता है उसे वह ईश्वर तक पहुँचाता
है। इसी प्रकार से समस्त देवता श्रीभगवान् के आज्ञाकारी सेवकों की भाँति समस्त हवियों को उन तक

पहुँचाते हैं। यदि यह समझ कर देवताओं की उपासना की जाये तो इसमें कोई हानि नहीं है, किन्तु यदि कोई यह सोचे कि देवता श्रीभगवान् के तुल्य हैं और स्वतंत्र हैं तो उसे हम *हतज्ञान* अर्थात् ज्ञान की हानि (*कामैस्तैस्तैर्हज्ञानाः*) कहेंगे। अतः जो देवताओं को वास्तविक वर देनेवाला समझते हैं, वे त्रुटि करते हैं।

तथा घृतोदाद्वहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्रिप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन्क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तथा—और उसी प्रकार; घृत-उदात्—घृत सागर से; बहिः—बाहर, परे; क्रौञ्च-द्वीपः—क्रौंच द्वीप नामक अन्य द्वीप; द्वि-गुणः—दुगुना बड़ा; स्व-मानेन—समान विस्तार का; क्षीर-उदेन—दुग्ध सागर से; परितः—चारों ओर; उपक्लृप्तः—घिरा हुआ; वृतः—घिरा; यथा—सदृश; कुश-द्वीपः—कुशद्वीप; घृत-उदेन—घृत सागर से; यस्मिन्—जिसमें; क्रौञ्चः नाम—क्रौंच नामक; पर्वत-राजः—पर्वतों का राजा; द्वीप-नाम—द्वीप का नाम; निर्वर्तकः—लिया जाता है; आस्ते—विद्यमान है।

घृतसागर के बाहर क्रौंचद्वीप नाम का एक अन्य द्वीप है, जिसकी चौड़ाई घृतसागर से दुगुनी अर्थात् १६,००,००० योजन (१२,८००,००० मील) है। जिस प्रकार कुशद्वीप घृतसागर से घिरा हुआ है उसी प्रकार क्रौंचद्वीप अपने ही समान चौड़ाई वाले दुग्ध-सागर (क्षीरसागर) से घिरा हुआ है। क्रौंचद्वीप में क्रौंच नामक एक विशाल पर्वत है, जिसके कारण इस द्वीप का यह नाम पड़ा।

योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; असौ—वह (पर्वत); गुह-प्रहरण—भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेय के प्रहार द्वारा; उन्मथित—मथा हुआ; नितम्ब-कुञ्जः—ढालों पर के वृक्ष तथा वनस्पतियाँ; अपि—यद्यपि; क्षीर-उदेन—क्षीर सागर से; आसिच्यमानः—सदैव सिंचित होकर; भगवता—सर्वशक्तिमान द्वारा; वरुणेन—वरुण नाम देवता के द्वारा; अभिगुप्तः—सुरक्षित; विभयः बभूव—निर्भय हो गया है।

यद्यपि कार्तिकेय के शस्त्र प्रहार से क्रौंच पर्वत के ढालों की वनस्पतियाँ विनष्ट हो गई थीं, किन्तु चारों ओर से क्षीरसागर द्वारा सदा सिंचित होने एवं वरुण देव के द्वारा संरक्षित होने से यह पर्वत पुनः निर्भीक हो गया है।

तस्मिन्नपि प्रियव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त
रिक्थादान्वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान्भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य
हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम. ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस द्वीप में; अपि—भी; प्रियव्रतः—महाराज प्रियव्रत का पुत्र; घृत-पृष्ठः—घृतपृष्ठ; नाम—नामक; अधिपतिः—स्वामी,
राजा; स्वे—अपने; द्वीपे—द्वीप में; वर्षाणि—भूभाग; सप्त—सात; विभज्य—विभाजित करके; तेषु—उनमें से प्रत्येक में; पुत्र-
नामसु—अपने पुत्रों के नाम वाले; सप्त—सात; रिक्था-दान्—पुत्र; वर्ष-पान्—वर्षों के स्वामी; निवेश्य—नियुक्त करके;
स्वयम्—स्वयं; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; भगवतः—श्रीभगवान् का; परम-कल्याण-यशसः—जिसका यश परम
कल्याणकारी है; आत्म-भूतस्य—समस्त आत्माओं की आत्मा; हरैः चरण-अरविन्दम्—हरि के चरणकमल में; उपजगाम—
शरण ली।

इस द्वीप के अधिपति महाराज प्रियव्रत के अन्य पुत्र थे जिनका नाम घृतपृष्ठ था और जो
अत्यन्त विद्वान् थे। उन्होंने भी अपने देश को सात भागों में विभाजित करके उनके नाम अपने
सातों पुत्रों के नामों के अनुसार रखे और स्वयं गृहस्थ जीवन से विरक्त होकर परम
कल्याणकारी, समस्त आत्माओं की आत्मा श्रीभगवान् के पदारविन्दों में शरण ली। इस प्रकार
वे सिद्धि को प्राप्त हुए।

आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त
सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया
अमृतौघा आर्यका तीर्थवती रूपवती पवित्रवती शुक्लेति. ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आमः—आम; मधु-रुहः—मधुरुह; मेघ-पृष्ठः—मेघपृष्ठ; सुधामा—सुधामा; भ्राजिष्ठः—भ्राजिष्ठ; लोहितार्णः—लोहितार्ण;
वनस्पतिः—वनस्पति; इति—इस प्रकार; घृतपृष्ठ-सुताः—घृतपृष्ठ के पुत्र; तेषाम्—इन पुत्रों के; वर्ष-गिरयः—देश की सीमा
विभाजन करने वाले पर्वत; सप्त—सात; सप्त—सात; एव—भी; नद्यः—नदियाँ; च—तथा; अभिख्याताः—सुप्रसिद्ध; शुक्लः
वर्धमानः—शुक्ल तथा वर्धमान; भोजनः—भोजन; उपबर्हिणः—उपबर्हिण; नन्दः—नन्द; नन्दनः—नन्दन; सर्वतः—भद्रः—
सर्वतोभद्र; इति—इस प्रकार; अभया—अभया; अमृतौघा—अमृतौघा; आर्यका—आर्यका; तीर्थवती—तीर्थवती; रूपवती—
रूपवती; पवित्रवती—पवित्र-वती; शुक्ला—शुक्ला; इति—इस प्रकार।

महाराज घृतपृष्ठ के पुत्रों के नाम आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा
वनस्पति थे। उनके द्वीप में सात पर्वत थे, जो सात देशों की सीमाओं को सूचित करने वाले थे
और सात नदियाँ भी थीं। पर्वतों के नाम हैं—शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नन्द, नन्दन तथा
सर्वतोभद्र। नदियों के नाम अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती तथा
शुक्ला हैं।

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां
पूर्णनाञ्जलिना यजन्ते. ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यासाम्—सभी नदियों का; अम्भः—जल; पवित्रम्—अत्यन्त पावन; अमलम्—अत्यन्त निर्मल; उपयुञ्जानाः—उपयोग करते हुए; पुरुष—पुरुष; ऋषभ—ऋषभ; द्रविण—द्रविण; देवक—देवक; संज्ञाः—नामों वाले; वर्ष—पुरुषाः—उन वर्षों के निवासी; आपः—मयम्—जल के स्वामी वरुण को; देवम्—उपास्य श्रीविग्रह के रूप में; अपाम्—जल को; पूर्णेन—पूर्ण; अञ्जलिना—अंजुली से; यजन्ते—आराधना करते हैं।

क्रौंच द्वीप के निवासी चार वर्णों में विभाजित हैं—पुरुष, ऋषभ, द्रविण तथा देवक। वे जल के स्वामी वरुण जिन का रूप जल के समान है के चरणारविन्दों पर इन पवित्र नदियों की जलाञ्जलि अर्पित करके श्रीभगवान् की पूजा करते हैं।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—आपोमयः अश्मयम्—क्रौंच द्वीप के विभिन्न वर्णों के लोग बद्ध अंजलि द्वारा पवित्र नदियों का जल प्रस्तर या लोहे के बने श्रीविग्रह पर अर्पित करते हैं।

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवःसुवः ।

ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

आपः—हे जल; पुरुष-वीर्याः—श्रीभगवान् की शक्ति से युक्त; स्थ—आप हैं; पुनन्तीः—पवित्र करने वाले; भूः—भूवः नामक लोक; भुवः—भूवः नामक लोक; सुवः—स्वःलोक; ताः—वह जल; नः—हम सबको; पुनीत—पवित्र करता है; अमीव-घ्नीः—पापों का नाश करने वाला; स्पृशताम्—स्पर्श करने वालों के; आत्मना—अपने स्वाभाविक पद के कारण; भुवः—देह; इति—इस प्रकार।

[क्रौंच द्वीप के निवासी इस मंत्र से उपासना करते हैं] हे नदियों के जल, आपको श्रीभगवान् से शक्ति प्राप्त है। अतः आप भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक को पवित्र करते हैं। अपने स्वाभाविक पद के कारण आप पापों को ग्रहण करते हैं, इसलिए हम आपका स्पर्श करते हैं। आप हमें पवित्र करते रहें।

तात्पर्य : भगवद्गीता (७.४) में श्रीकृष्ण का कथन है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

“पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी भिन्ना (अपरा) प्रकृति है।”

जिस प्रकार उष्मा तथा प्रकाश नामक सूर्य की शक्तियाँ इस ब्रह्माण्ड में क्रियाशील हैं और प्रत्येक

वस्तु को कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं, उसी प्रकार परमेश्वर की शक्ति सम्पूर्ण सृष्टि में क्रियाशील रहती है। शास्त्रों में वर्णित विशिष्ट नदियाँ भी श्रीभगवान् की शक्तियाँ हैं और जो व्यक्ति इनमें प्रतिदिन स्नान करते हैं, वे पवित्र होते रहते हैं। सचमुच अनेक लोग गंगा में स्नान करने मात्र से रोगमुक्त होते हैं। इसी प्रकार क्रौंच द्वीप के निवासी नदियों में स्नान करके पवित्र होते हैं।

एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन्शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; पुरस्तात्—परे; क्षीर-उदात्—क्षीर सागर से; परितः—चारों ओर; उपवेशितः—स्थित; शाक-द्वीपः—शाकद्वीप नामक अन्य द्वीप; द्वा-त्रिंशत्—बत्तीस; लक्ष—लाख; योजन—योजन; आयामः—जिसकी माप; समानेन—समान लम्बाई वाला; च—और; दधि-मण्ड-उदेन—मट्टे के समान जल वाले समुद्र द्वारा; परीतः—आवृत; यस्मिन्—जिसमें; शाकः—शाक; नाम—नामक; महीरुहः—अंजीर का वृक्ष; स्व-क्षेत्र-व्यपदेशकः—जिससे द्वीप का यह नाम पड़ा; यस्य—जिसका; ह—निस्सन्देह; महा-सुरभि—अत्यधिक भीनी; गन्धः—सुगन्ध; तम् द्वीपम्—उस द्वीप को; अनुवासयति—महकाती रहती है।

क्षीर समुद्र से बाहर शाकद्वीप है, जिसकी चौड़ाई ३२,००,००० योजन (२,५६,००,००० मील) है। जिस प्रकार क्रौंचद्वीप अपने ही क्षीरसागर से घिरा है उसी प्रकार शाकद्वीप अपने ही समान चौड़ाई वाले मट्टे के समुद्र से घिरा है। शाकद्वीप में एक विशाल शाक वृक्ष है, जिससे इस द्वीप का यह नाम पड़ा। यह वृक्ष अत्यन्त सुगन्धित है। इससे सारा द्वीप महकता रहता है।

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान्पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन्स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तस्य अपि—इस द्वीप का भी; प्रैयव्रतः—महाराज प्रियव्रत का पुत्र; एव—निश्चय ही; अधिपतिः—राजा; नाम्ना—नामक; मेधा-तिथिः—मेधातिथि; सः अपि—वह भी; विभज्य—विभाजित करके; सप्त वर्षाणि—द्वीप के सात विभाग; पुत्र-नामानि—पुत्रों के नाम; तेषु—उनमें; स्व-आत्मजान्—अपने पुत्रों; पुरोजव—पुरोजव; मनोजव—मनोजव; पवमान—पवमान; धूम्रानीक—धूम्रानीक; चित्र-रेफ—चित्ररेफ; बहु-रूप—बहुरूप; विश्वधार—विश्वधार; संज्ञान्—नाम वाले; निधाप्य—प्रतिष्ठित करके; अधिपतीन्—शासक, राजा; स्वयम्—स्वयं; भगवति—श्रीभगवान् में; अनन्ते—अनन्त रूप में; आवेशित-मतिः—ध्यानमग्न; तपः-वनम्—तपोवन में; प्रविवेश—प्रवेश किया।

इस द्वीप के स्वामी प्रियव्रत के ही पुत्र मेधातिथि थे। उन्होंने भी अपने द्वीप को सात भागों में विभाजित करके उनका नाम अपने पुत्रों के नाम पर रखा और उन्हें उन द्वीपों का राजा बना दिया। उनके इन पुत्रों के नाम हैं—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा

विश्वधार। इस द्वीप को विभाजित करके अपने पुत्रों को उनका राजा बनाकर मेधापति स्वयं विरक्त हो गये और उन्होंने अपने मन को श्रीभगवान् के चरणारविन्दों में लगाने के उद्देश्य से ध्यान-योग्य एक तपोवन में प्रवेश किया।

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघायुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एतेषाम्—इन समस्त विभागों की; वर्ष-मर्यादा—सीमा रेखा के रूप में; गिरयः—बड़ी बड़ी पहाड़ियाँ; नद्यः च—तथा नदियाँ भी; सप्त—सात; एव—निस्सन्देह; ईशानः—ईशान; उरुशृङ्गः—उरुशृंग; बल-भद्रः—बलभद्र; शत-केसरः—शतकेसर; सहस्र-स्रोतः—सहस्रस्रोत; देव-पालः—देवपाल; महानसः—महानस; इति—इस प्रकार; अनघा—अनघा; आयुर्दा—आयुर्दा; उभयस्पृष्टिः—उभयस्पृष्टि; अपराजिता—अपराजिता; पञ्चपदी—पंचपदी; सहस्र-स्रुतिः—सहस्र-स्रुति; निज-धृतिः—निजधृति; इति—इस प्रकार।

इन द्वीपों में भी सात मर्यादा पर्वत तथा सात ही नदियाँ हैं। पर्वतों के नाम ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्र-स्रोत, देवपाल तथा महानस हैं तथा नदियाँ अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति तथा निजधृति हैं।

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तत्-वर्ष-पुरुषाः—उस वर्ष के निवासी; ऋत-व्रत—ऋतव्रत; सत्य-व्रत—सत्यव्रत; दान-व्रत—दानव्रत; अनुव्रत—अनुव्रत; नामानः—इन (चार) नाम वाले; भगवन्तम्—श्रीभगवान्; वायु-आत्मकम्—वायु देवता के रूप में; प्राणायाम—प्राणायाम द्वारा; विधूत—निर्मल बनाया; रजः-तमसः—रजोगुण तथा तमोगुण; परम समाधिना—परम समाधि द्वारा; यजन्ते—उपासना करते हैं।

उन द्वीपों के वासी भी ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत—इन चार वर्णों में विभक्त हैं, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के समान हैं। वे प्राणायाम तथा योग साधते हैं और समाधि द्वारा वायु रूप में परमेश्वर भगवान् की उपासना करते हैं।

अन्तःप्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।

अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-प्रविश्य—अन्तःकरण में प्रवेश करके; भूतानि—समस्त प्राणियों का; यः—जो; बिभर्ति—पालन करता है; आत्म-केतुभिः—अन्तः वायु की क्रियाओं (प्राण, अपान इत्यादि) द्वारा; अन्तर्यामी—अन्तस्थ परमात्मा; ईश्वरः—परमेश्वर; साक्षात्—साक्षात्; पातु—पालन करे; नः—हमारा; यत्-वशे—जिसके वश में; स्फुटम्—विगाट जगत।

[शाकद्वीप के निवासी वायु रूप में श्रीभगवान् की उपासना निम्नलिखित शब्दों से करते हैं] हे परम पुरुष, देह के भीतर परमात्मा रूप में स्थित आप विभिन्न वायुओं यथा प्राण की विभिन्न क्रियाओं का संचालन करने वाले तथा समस्त जीवात्माओं का पालन करने वाले हैं। हे ईश्वर, हे परमात्मा, हे विराट जगत के नियामक, आप सभी प्रकार के संकटों से हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य : योगीजन प्राणायाम नामक योगक्रिया के बल से शरीर के भीतर वायु को रोक कर शरीर को स्वस्थ रखते हैं। इस प्रकार योगी समाधि दशा को प्राप्त होते हैं और अपने हृदय-प्रदेश में श्रीभगवान् को देखने का प्रयास करते हैं। अपने हृदय-प्रदेश में श्रीभगवान् को अन्तर्यामी रूप में देखकर उसमें तल्लीन रहने के लिए समाधि की अवस्था प्राप्त करना आवश्यक है जो प्राणायाम के माध्यम से सम्भव है।

एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन्बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

एवम् एव—इस प्रकार; दधि-मण्ड-उदात्—मट्टे के सागर से; परतः—परे; पुष्कर-द्वीपः—पुष्कर द्वीप नामक अन्य द्वीप; ततः—उस (शाकद्वीप) की अपेक्षा; द्वि-गुण-आयामः—जिसका विस्तार दुगुना है; समन्ततः—चारों दिशाओं में; उपकल्पितः—घिरा हुआ; समानेन—समान विस्तार वाला; स्वादु-उदकेन—मधुर जल वाले; समुद्रेण—समुद्र से; बहिः—बाहर से; आवृतः—घिरा हुआ; यस्मिन्—जिसमें; बृहत्—विशाल; पुष्करम्—कमल पुष्प; ज्वलन-शिखा—प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं सदृश; अमल—निर्मल; कनक—स्वर्ण; पत्र—पत्तियाँ; अयुत-अयुतम्—लाखों अथवा दस करोड़; भगवतः—अत्यन्त शक्तिमान; कमल आसनस्य—ब्रह्मा का, जिनका आसन कमल है; अध्यासनम्—आसन; परिकल्पितम्—माना जाता है।

दधि के समुद्र से बाहर पुष्कर नाम का एक अन्य द्वीप है जो इस समुद्र से दुगुनी चौड़ाई वाला अर्थात् ६४,००,००० योजन (५,२२,००,००० मील) है। यह द्वीप अपने ही समान चौड़ाई वाले मधुर जल के सागर से घिरा हुआ है। पुष्कर द्वीप में अग्नि की ज्वालाओं के समान देदीप्यमान दस करोड़ स्वर्णिम पंखुड़ियों वाला विशाल कमल का पुष्प है, जो सर्वशक्तिमान तथा इसी कारण कभी कभी भगवान् कहलाने वाले ब्रह्मा का आसन माना जाता है।

तद्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्ठात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्-द्वीप-मध्ये—उस द्वीप के मध्य में; मानसोत्तर—मानसोत्तर; नाम—नामक; एकः—एक; एव—निस्सन्देह; अर्वाचीन—इस ओर; पराचीन—उस ओर; वर्षयोः—वर्षों (भूभागों) के; मर्यादा—सीमा सूचक; अचलः—पर्वत; अयुत—दस हजार; योजन—आठ मील तुल्य दूरी; उच्छ्राय-आयामः—जिसकी ऊँचाई तथा चौड़ाई; यत्र—जहाँ; तु—लेकिन; चतसृषु—चारों; दिक्षु—दिशाओं में; चत्वारि—चार; पुराणि—नगर; लोक-पालानाम्—लोकों के पालकों का; इन्द्र-आदीनाम्—इंद्र आदि; यत्—जिसका; उपरिष्ठात्—ऊपर; सूर्य-रथस्य—सूर्य देव के रथ का; मेरुम्—मेरु पर्वत; परिभ्रमतः—परिक्रमा करते हुए; संवत्सर-आत्मकम्—एक संवत्सर वाला; चक्रम्—चक्र; देवानाम्—देवताओं का; अहः-रात्राभ्याम्—दिन तथा रात्रि से; परिभ्रमति—चक्कर लगाता है।

उस द्वीप के बीचोंबीच, भीतरी तथा बाहरी ओर की सीमा बनाने वाला मानसोत्तर नाम का एक पर्वत है। यह दस हजार योजन (८०,००० मील) ऊँचा और इतना ही चौड़ा है इसके ऊपर चारों दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की पुरियाँ हैं। सूर्यदेव अपने रथ में आरूढ़ होकर इस पर्वत के ऊपर संवत्सर नामक परिधि में, जो मेरु पर्वत का चक्कर लगाती है, यात्रा करते हैं। उत्तर दिशा में सूर्य का पथ उत्तरायण और दक्षिण दिशा में दक्षिणायन कहलाता है। देवताओं के लिए एक दिशा में दिन होता है, तो दूसरी में रात्रि।

तात्पर्य : सूर्य की गति की पुष्टि ब्रह्म-संहिता (५.५२) से भी होती है—यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृत-कालचक्रः। सूर्य छः मास तक सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में और छः मास तक दक्षिण दिशा में चक्कर लगाता है। स्वर्गलोक के देवताओं के दिन और रात्रि की यही अवधियाँ हैं।

तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तत्-द्वीपस्य—उस द्वीप का; अपि—भी; अधिपतिः—राजा; प्रैयव्रतः—महाराज प्रियव्रत का पुत्र; वीतिहोत्रः नाम—वीतिहोत्र नामक; एतस्य—उसके; आत्म-जौ—अपने दो पुत्रों को; रमणक—रमणक; धातकि—तथा धातकि; नामानौ—नाम वाले; वर्ष-पती—दोनों वर्षों के स्वामी; नियुज्य—नियुक्त करके; सः स्वयम्—वह स्वयं; पूर्वज-वत्—अपने अन्य भाइयों के समान; भगवत्-कर्म-शीलः—श्रीभगवान् को प्रसन्न करने में लीन; एव—निस्सन्देह; आस्ते—लगा रहता है।

इस द्वीप का अधिपति महाराज प्रियव्रत का पुत्र वीतिहोत्र था जिसके रमणक तथा धातकी नामक दो पुत्र हुए। उसने इन दोनों पुत्रों को इस द्वीप के दोनों छोर दे दिये और स्वयं अपने अग्रज मेधातिथि के समान श्रीभगवान् की सेवा में तत्पर रहने लगा।

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाराधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तत्-वर्ष-पुरुषाः—उस द्वीप के वासी; भगवन्तम्—श्रीभगवान्; ब्रह्म-रूपिणम्—कमलासीन भगवान् ब्रह्मा के रूप में; स-कर्मकेण—भौतिक कामनाओं की पूर्ति हेतु; कर्मणा—वेदविहित अनुष्ठान करके; आराधयन्ति—आराधना करते हैं; इदम्—यह; च—तथा; उदाहरन्ति—जप करते हैं।

इस द्वीप के वासी अपनी भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए ब्रह्मा के रूप में श्रीभगवान् की आराधना करते हैं। वे इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं।

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।

एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; तत्—वह; कर्म-मयम्—वैदिक कृत्यों के द्वारा प्राप्य; लिङ्गम्—स्वरूप को; ब्रह्म-लिङ्गम्—जिससे परब्रह्म जाने जाते हैं; जनः—व्यक्ति; अर्चयेत्—अर्चना करनी चाहिए; एकान्तम्—एक परम ब्रह्म में पूर्ण आस्था रखने वाला; अद्वयम्—अभिन्न; शान्तम्—शान्त; तस्मै—उन; भगवते—सर्वशक्तिमान को; नमः—नमस्कार है; इति—इस प्रकार।

भगवान् ब्रह्मा कर्ममय कहलाते हैं, क्योंकि अनुष्ठानों को करके कोई भी उनका पद प्राप्त कर सकता है और उन्हीं से वैदिक अनुष्ठान-स्तुतियाँ प्रकट होती हैं। वे अविचल भाव से श्रीभगवान् की भक्ति करते हैं, अतः एक प्रकार से वे भगवान् से अभिन्न हैं। फिर भी उनकी उपासना एकान्तिक भाव से न करके द्वैत भाव से करनी चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि अपने को दास मानते हुए पर-ब्रह्म को ही परम आराध्य माने। अतः हम भगवान् ब्रह्मा को साक्षात् वेदज्ञान के रूप में नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आगत कर्म-मयम् शब्द महत्त्वपूर्ण है। वेदों का वचन है—स्वधर्म-निष्ठः शतजन्मभिः पुमान् विरिञ्चिताम् एति—जो एक सौ जन्मों तक वर्णाश्रम धर्म के नियमों का कठोरता से पालन करता है उसे ब्रह्मा-पद की प्राप्ति होती है। यद्यपि भगवान् ब्रह्मा अत्यन्त शक्तिमान हैं, किन्तु वे कभी भी अपने को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न नहीं मानते, क्योंकि उन्हें यह ज्ञात है कि वे ईश्वर के शाश्वत दास हैं। चूँकि आध्यात्मिक स्तर पर अभिन्न रूप से भगवान् तथा दास एक हैं, इसीलिए ब्रह्मा को यहाँ भगवान् कहा गया है। भगवान् तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं, किन्तु यदि कोई भक्त परम आस्था से उनकी सेवा करता है, तो वैदिक साहित्य का उसे ज्ञान हो जाता है। इसीलिए ब्रह्मा को ब्रह्मलिङ्ग कहा जाता है, जिससे यह बोध होता है कि उनका सम्पूर्ण स्वरूप वैदिक ज्ञानमय है।

ऋषिरुवाच

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः. ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ततः—मधुर जल के सागर से; परस्तात्—परे, आगे; लोकालोक-नाम—लोकालोक नामक; अचलः—पर्वत; लोक-
अलोकयोः अन्तराले—प्रकाश तथा अंधकार से पूर्ण देशों के मध्य में; परितः—चारों ओर; उपक्षिप्तः—विद्यमान है।

इसके पश्चात् मृदुल जल वाले सागर के आगे तथा इसको पूरी तरह घेरने वाला लोकालोक नामक पर्वत है जो देशों को सूर्य से प्रकाशित तथा अप्रकाशित इन दो भागों में विभाजित कर देता है।

यावन्मानसोत्तरमेवोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः
प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जहाँ तक; मानसोत्तर-मेवोः अन्तरम्—मानसोत्तर तथा मेरु के बीच की भूमि (सुमेरु पर्वत के मध्य से प्रारम्भ);
तावती—वहाँ तक; भूमिः—भूमि; काञ्चनी—स्वर्णनिर्मित; अन्या—अन्य; आदर्श-तल-उपमा—जिसका तल दर्पण की तरह है;
यस्याम्—जिस पर; प्रहितः—गिराई हुई; पदार्थः—वस्तु; न—नहीं; कथञ्चित्—किसी प्रकार से; पुनः—फिर; प्रत्युपलभ्यते—
पाई जाती है; तस्मात्—अतः; सर्व-सत्त्व—सारे जीवों द्वारा; परिहृता—परित्यक्त; आसीत्—थी।

मृदुल जल के सागर से आगे सुमेरु पर्वत के मध्य से लेकर मानसोत्तर पर्वत की सीमा तक जितना अन्तर है उतनी भूमि है। उस भूभाग में अनेक प्राणी रहते हैं। उसके आगे लोकालोक पर्वत तक फैली हुई दूसरी भूमि है जो स्वर्णमय है। स्वर्णमय सतह के कारण यह दर्पण की तरह सूर्य प्रकाश को परावर्तित कर देती है, अतः इसमें गिरी हुई वस्तु पुनः नहीं दिखाई पड़ती। फलतः सभी प्राणियों ने इस स्वर्णमयी भूमि का परित्याग कर दिया है।

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

लोक—प्रकाश(अथवा वासियों) से; अलोकः—प्रकाशरहित (अथवा वासियों से विहीन); इति—इस प्रकार से; समाख्या—
पद; यत्—जो; अनेन—इस; अचलेन—पर्वत से; लोक—जीवात्माओं के देश; अलोकस्य—बिना प्राणियों वाले देश का;
अन्तर्वर्तिना—मध्य में स्थित; अवस्थाप्यते—स्थित है।

जीवात्माओं से युक्त तथा बिना प्राणियों वाले देशों के मध्य में एक विशाल पर्वत है जो इन दोनों को पृथक् करता है, अतः लोकालोक नाम से विख्यात है।

स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां
गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रील्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥

३७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह पर्वत; लोक-त्रय-अन्ते—तीनों लोकों (भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक) के अन्त में; परितः—चारों ओर; ईश्वरेण—भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा; विहितः—सृष्टि की; यस्मात्—जिससे; सूर्य-आदीनाम्—सूर्यलोक का; ध्रुव-अपवर्गणाम्—ध्रुव तथा अन्य निम्नतर नक्षत्रों तक; ज्योतिः-गणानाम्—समस्त नक्षत्रों का; गभस्तयः—किरणें; अर्वाचीनान्—इस दिशा में; त्रीन्—तीन; लोकान्—लोक; आवितन्वानाः—विस्तीर्ण; न—नहीं; कदाचित्—किसी समय; पराचीनाः—उस पर्वत की सीमा के परे; भवितुम्—होने के लिए; उत्सहन्ते—समर्थ हैं; तावत्—उतना; उन्नहन-आयामः—पर्वत की ऊँचाई की माप।

श्रीकृष्ण की परमेच्छा से लोकालोक नामक पर्वत तीनों लोकों—भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक—की बाहरी सीमा के रूप में स्थापित किया गया है, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सूर्य की किरणों का नियंत्रण किया जा सके। सूर्य से लेकर ध्रुवलोक एवं सारे नक्षत्र इन तीनों लोकों में इस पर्वत के द्वारा निर्मित सीमा के अन्तर्गत अपनी किरणें बिखेरते हैं। चूँकि यह पर्वत ध्रुवलोक से भी ऊँचा है, अतः यह नक्षत्रों की किरणों को अवरुद्ध कर लेता है, जिससे वे कभी भी इसके बाहर प्रसारित नहीं हो पातीं।

तात्पर्य : लोकत्रय से हमारा प्रयोजन उन तीन लोकों—भूः, भुवः तथा स्वः—से है जिनमें यह ब्रह्माण्ड विभक्त है। इन लोकों को घेरने वाली आठ दिशाएँ हैं, जिनके नाम हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व, उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम। लोकालोक पर्वत की स्थापना समस्त लोकों की बाह्य सीमा में इसलिए की गई, जिससे सूर्य तथा अन्य नक्षत्रों की किरणें समस्त ब्रह्माण्ड में समान रूप से वितरित हों।

सूर्य की किरणें ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों में जिस प्रकार वितरित होती हैं, इसका यह वर्णन अत्यन्त वैज्ञानिक है। शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को यह विश्वविवरण जैसा अपने पूर्वजों से सुना था कह सुनाया। उन्होंने इन तथ्यों को पाँच हजार वर्ष पूर्व कह सुनाया था, किन्तु यह ज्ञान बहुत काल पहले से उपलब्ध था और श्रीशुकदेव गोस्वामी ने इसे शिष्य परम्परा से प्राप्त किया। परम्परा से प्राप्त होने से यह ज्ञान पूर्ण है। इसके विपरीत आधुनिक विज्ञान का इतिहास कुछ सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। अतः यदि आधुनिक विज्ञानी *श्रीमद्भागवत* के अन्य तथ्यों को न भी स्वीकार करें तो भी वे दीर्घकाल से चली आने वाली नक्षत्रविज्ञान सम्बन्धी पूर्ण गणनाओं को कैसे अस्वीकार कर सकते हैं? *श्रीमद्भागवत* से अथाह सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। किन्तु आधुनिक विज्ञानियों को अन्य लोकों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है और वास्तविकता तो यह है कि जिस लोक में हम रह रहे हैं उससे भी वे ठीक से परिचित नहीं हो पाये हैं।

एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः. ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

एतावान्—इतना; लोक-विन्यासः—विभिन्न लोकों का वितरण; मान—परिमाण; लक्षण—लक्षण, चिह्न; संस्थाभिः—तथा उनकी विभिन्न स्थितियाँ; विचिन्तितः—वैज्ञानिक गणनाओं द्वारा निश्चित की गई; कविभिः—विद्वानों के द्वारा; सः—वह; तु—लेकिन; पञ्चाशत्-कोटि—पचास करोड़ योजन; गणितस्य—गणना करने पर; भू-गोलस्य—भूगोलक नामक लोक का; तुरीय-भागः—चतुर्थांश; अयम्—यह; लोकालोक-अचलः—लोकालोक नामक पर्वत।

ऋटि, भ्रम तथा वंचना से मुक्त विद्वानों ने प्रमाण, लक्षण और स्थिति के अनुसार लोकों का इतना ही विस्तार बतलाया है। उन्होंने विचार-विमर्श के बाद यह स्थापना की है कि सुमेरु तथा लोकालोक पर्वत की दूरी ब्रह्माण्ड के व्यास की चतुर्थांश अर्थात् १२,५०,००० (साढ़े बारह करोड़) योजन (एक अरब मील) है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने लोकालोक पर्वत की स्थिति, सूर्य गोलक की गतियों तथा सूर्य एवं ब्रह्माण्ड की परिधि के बीच की दूरी के सम्बन्ध में सही-सही ज्योतिषीय वैज्ञानिक जानकारी प्रस्तुत की है। किन्तु ज्योतिर्वेद द्वारा इन गणनाओं में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी में अनुवाद कर पाना कठिन है। अतः पाठकों को सन्तुष्ट करने के लिए हम श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा संस्कृत में दिए गये कथन को यथावत् उद्धृत कर रहे हैं—

स तु लोकालोकस्तु भूगोलकस्य भूसम्बन्धाण्डगोलकस्येत्यर्थः। सूर्यस्य एव भुवोऽप्य-
ण्डगोलकयोर्मध्यवर्तित्वात् खगोलमिव भूगोलमपि पञ्चाशत्कोटियोजनप्रमाणं तस्य तुरीयभागः
सार्धद्वादशकोटियोजनविस्तारोच्छ्राय इत्यर्थः भूस्तु चतुस्त्रिंशल्लक्षणपञ्चाशत्कोटिप्रमाणा ज्ञेया। यथा
मेरुमध्यान्मानसोत्तरमध्यपर्यन्तं साद्धसप्तपञ्चाशल्लक्षोत्तरकोटियोजनप्रमाणम्।
मानसोत्तरमध्यात्स्वादूदकसमुद्रपर्यन्तं षण्णवतिलक्षयोजनप्रमाणं ततः काञ्चनीभूमिः
सार्धसप्तपञ्चाशल्लक्षोत्तरकोटियोजनप्रमाणा एवमेकतो
मेरुलोकालोकयोरन्तरालमेकादशशल्लक्षाधिकचतुष्कोटिपरिमितमन्यतोऽपि तथत्येतो
लोकालोकाल्लोकपर्यन्तं स्थानं द्वाविंशतिलक्षोत्तराष्टकोटिपरिमितं लोकालोकाद्बहिरप्येकतः एतावदेव
अन्यतोऽप्येतावदेव यद्वक्ष्यते, योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं
यद्वर्हिर्लोकालोकाचलादित्येकतो लोकालोकः सार्धद्वादशकोटियोजपरिमाणतः अन्यतोऽपि स तथेत्येवं

चतुस्त्रिंशल्लक्षोनपञ्चाशत्कोटिप्रमाणा भूः साब्धिद्वीपपर्वता ज्ञेया। अतएवाण्डगोलकात् सर्वतो दिक्षु सप्तदशलक्षयोजनावकाशे वर्तमाने सति पृथिव्याः शेषनागेन धारणं दिग्गजैश्च निश्चलीकरणं सार्थकं भवेदन्यथा तु व्याख्यान्तरे पञ्चाशत्कोटिप्रमाणत्वाद् अण्डगोलकलग्नत्वे तत् तत् सर्वम् अकिंचित्करं स्यात् चाक्षुषे मन्वन्तरे चाकस्मात् मज्जनं श्रीवराहदेवेनोत्थापनं च दुर्घटं स्यादित्यधिकं विवेचनीयम्।

तदुपरिष्ठाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः॥ ३९॥

शब्दार्थ

तत्-उपरिष्ठात्—लोकालोक पर्वत की चोटी पर; चतसृषु आशासु—चारों दिशाओं में; आत्म-योनिना—भगवान् ब्रह्मा द्वारा; अखिल-जगत्-गुरुणा—समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु; अधिनिवेशिताः—स्थापित; ये—वे सब; द्विरद-पतयः—हाथियों में श्रेष्ठ; ऋषभः—ऋषभ; पुष्कर-चूडः—पुष्करचूड; वामनः—वामन; अपराजितः—अपराजित; इति—इस प्रकार; सकल-लोक-स्थिति-हेतवः—विश्व के अन्तर्गत विभिन्न लोकों के पालन के कारण।

लोकालोक पर्वत के ऊपर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परम-गुरु भगवान् ब्रह्मा के द्वारा स्थापित गजों में श्रेष्ठ चार गज-पति हैं। इन गजों के नाम हैं-ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन तथा अपराजित। ये ब्रह्माण्ड के लोकों को धारण करते हैं।

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः सन्धारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते॥ ४०॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनमें से; स्व-विभूतीनाम्—जो उनके व्यक्तिगत अंश-विस्तार तथा सेवक हैं; लोक-पालानाम्—जिन पर विश्व के कार्य व्यापारों की देख-रेख का भार है; च—तथा; विविध—नाना प्रकार; वीर्य-उपबृंहणाय—शक्तियों के प्रसार हेतु; भगवान्—श्रीभगवान्; परम-महा-पुरुषः—सभी प्रकार के ऐश्वर्य के आद्य स्वामी, श्रीभगवान्; महा-विभूति-पतिः—समस्त अकल्पनीय शक्तियों के स्वामी; अन्तर्यामी—परमात्मा; आत्मनः—अपना; विशुद्ध-सत्त्वम्—प्रकृति के गुणों से निष्कलुष अस्तित्व वाला; धर्म-ज्ञान-वैराग्य—धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य का; ऐश्वर्य-आदि—समस्त प्रकार के ऐश्वर्य का; अष्ट—आठ; महा-सिद्धि—तथा महान् सिद्धियाँ; उपलक्षणम्—गुणमय; विष्वक्सेन-आदिभिः—विष्वक्सेन आदि अपने अंश-विस्तार द्वारा; स्व-पार्षद-प्रवरैः—अपने श्रेष्ठ सहायकों से; परिवारितः—घिरे हुए; निज—अपना; वर-आयुध—विभिन्न प्रकार के शस्त्र-अस्त्रों द्वारा; उपशोभितैः—सुशोभित; निज—निजी; भुज-दण्डैः—भुजदण्ड द्वारा; सन्धारयमाणः—इस रूप को प्रकट करके; तस्मिन्—उस समस्त लोकों के कल्याण हेतु; गिरि-वरे—महान् पर्वत; समन्तात्—चारों ओर; सकल-लोक-स्वस्तये—सारे लोकों के लाभ हेतु; आस्ते—हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् समस्त दिव्य ऐश्वर्य तथा चिदाकाश के स्वामी हैं। वे परम पुरुष हैं अर्थात् भगवान् हैं, वे प्रत्येक प्राणी के परमात्मा हैं। स्वर्ग लोक के राजा इन्द्र के अधीन देवतागण इस भौतिक जगत् के कार्यों का निरीक्षण करते हैं। विभिन्न लोकों के प्राणियों के लाभ हेतु तथा उन हाथियों तथा देवताओं की शक्ति को बढ़ाने के लिए भगवान् स्वयं उस पर्वत

की चोटी पर प्रकृति के गुणों से अदूषित दिव्य शरीर धारण करके प्रकट होते हैं। अपने निजी प्रकाश तथा विष्वक्सेन जैसे सहायकों से घिरे रह कर वे अपने पूर्ण ऐश्वर्य (यथा ज्ञान तथा धर्म) एवं अपनी शक्तियों (यथा अणिमा, लघिमा तथा महिमा) को प्रदर्शित करते हैं। वे सुअलंकृत हैं और अपनी चारों भुजाओं में विविध आयुध धारण किये हुए हैं।

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीयायेत्यर्थः. ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

आ-कल्पम्—कल्प के अन्त तक; एवम्—इस प्रकार; वेषम्—वेश; गतः—स्वीकार किया; एषः—यह; भगवान्—श्रीभगवान्; आत्म-योग-मायया—अपनी योगमाया से; विरचित—सम्पन्न; विविध-लोक-यात्रा—विभिन्न लोकों का जीवनयापन; गोपीयाय—पालन करने भर को; इति—इस प्रकार; अर्थः—प्रयोजन।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विविध रूप, यथा नारायण तथा विष्णु, विभिन्न आयुधों से अलंकृत हैं। श्रीभगवान् अपनी योगमाया से उत्पन्न समस्त लोकों का पालन करने के लिए इन रूपों को प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (४.६) में भगवान् श्रीकृष्ण का वचन है—सम्भवाम्यात्ममायया—मैं अपनी आन्तरिक शक्ति से प्रकट होता हूँ। आत्ममाया शब्द से ईश्वर की अपनी शक्ति योगमाया का बोध होता है। अपनी योगमाया से भौतिक तथा वैकुण्ठ जगत दोनों की सृष्टि करने के पश्चात् वे विष्णु तथा देवताओं के विभिन्न रूपों में विस्तारित होकर इसका पालन करते हैं। वे भौतिक सृष्टि का आरम्भ से अन्त तक पालन करते हैं और दिव्य लोक का वे स्वयं पालन करते हैं।

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात्; ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति. ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—वह जो; अन्तः-विस्तारः—लोकालोक पर्वत की आन्तरिक दूरी; एतेन—इससे; हि—ही; अलोक-परिमाणम्—अलोक वर्ष का विस्तार; च—तथा; व्याख्यातम्—वर्णित; यत्—जो; बहिः—बाहर की ओर; लोकालोक-अचलात्—लोकालोक पर्वत से आगे; ततः—वह; परस्तात्—परे, आगे; योगेश्वर-गतिम्—ब्रह्माण्ड के आवरणों को भेदने के लिए योगेश्वर (कृष्ण) का मार्ग; विशुद्धाम्—भौतिक कलुष से रहित; उदाहरन्ति—वे कहते हैं।

हे राजन्, लोकालोक पर्वत के बाहर अलोकवर्ष है जो पर्वत के भीतरी चौड़ाई के विस्तार के बराबर अर्थात् १२,५०,००,००० (साढ़े बारह करोड़) योजन (एक अरब मील) तक विस्तीर्ण है। अलोक वर्ष के परे भौतिक जगत से मुक्ति के इच्छुक व्यक्तियों का गन्तव्य है।

इसको प्रकृति के भौतिक गुण कलुषित नहीं कर पाते, अतः यह पूर्णतया विशुद्ध है। ब्राह्मण के पुत्रों को वापस लाते समय श्रीकृष्ण अर्जुन को इसी स्थान से होकर ले गये थे।

अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।

सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

अण्ड-मध्य-गतः—ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित; सूर्यः—सूर्य गोलक; द्याव्-आभूम्योः—भूलोक तथा भुवर्लोक नामक दो लोक; यत्—जो; अन्तरम्—के मध्य; सूर्य—सूर्य का; अण्ड-गोलयोः—तथा ब्रह्माण्ड के; मध्ये—बीच में; कोट्यः—एक करोड़ के समूह; स्युः—हैं; पञ्च-विंशतिः—पच्चीस।

सूर्य इस ब्रह्माण्ड के मध्य में, भूलोक तथा भुवर्लोक के मध्यवर्ती भाग में स्थित है, जिसे अन्तरिक्ष कहते हैं। सूर्य तथा ब्रह्माण्ड की परिधि के बीच की दूरी पच्चीस कोटि योजन (३ अरब मील) है।

तात्पर्य : कोटि शब्द का अर्थ करोड़ है तथा योजन आठ मील के बराबर होता है। इस ब्रह्माण्ड का व्यास पचास करोड़ योजन (चार अरब मील) है। चूँकि सूर्य मध्य में स्थित है, अतः सूर्य से ब्रह्माण्ड के सिरे तक की दूरी पच्चीस करोड़ योजन (दो अरब मील) आँकी गई है।

मृतेऽण्ड एष एतस्मिन्यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः ।

हिरण्यगर्भ इति यद्विरणयाण्डसमुद्भवः. ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

मृते—मृत; अण्डे—गोलक में; एषः—यह; एतस्मिन्—इसमें; यत्—जो; अभूत्—सृष्टि के समय स्वयं प्रविष्ट हुआ; ततः—उससे; मार्तण्ड—मार्तण्ड; इति—इस प्रकार; व्यपदेशः—नाम; हिरण्य-गर्भः—हिरण्यगर्भ नाम से विख्यात; इति—इस प्रकार; यत्—क्योंकि; हिरण्य-अण्ड-समुद्भवः—उनकी देह हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुई।

सूर्यदेव वैराज अर्थात् समस्त जीवात्माओं के लिए सम्पूर्ण भौतिक शरीर भी कहलाते हैं। ब्रह्माण्ड की सृष्टि के समय ब्रह्माण्ड के अण्डे के भीतर प्रवेश करने के कारण वे मार्तण्ड भी कहलाते हैं। हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) से भौतिक शरीर प्राप्त करने के कारण वे हिरण्यगर्भ भी कहलाते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा का पद परम पूर्णता प्राप्त तथा आध्यात्मिकता में उन्नत जीवों के लिए है। ऐसे जीवों के अभाव में विष्णु भगवान् अपना विस्तार ब्रह्मा के रूप में करते हैं, किन्तु ऐसा विरले ही होता है। फलतः ब्रह्मा दो प्रकार के हैं—कभी वे सामान्य जीवात्मा के रूप में रहते हैं, तो कभी श्रीभगवान्

के रूप में। यहाँ पर सामान्य ब्रह्मा का उल्लेख हुआ है। ब्रह्मा चाहे जिस रूप में हों वे वैराज ब्रह्मा तथा हिरण्यगर्भ ब्रह्मा कहे जाते हैं। इसीलिए सूर्यदेव को भी वैराज ब्रह्मा के रूप में माना गया है।

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

सूर्येण—सूर्यदेव द्वारा; हि—ही; विभज्यन्ते—विभाजित हैं; दिशः—दिशाएँ; खम्—आकाश; द्यौः—स्वर्गलोक; मही—पृथ्वीलोक; भिदा—अन्य वर्गीकरण; स्वर्ग—स्वर्गलोक; अपवर्गौ—मुक्ति के लिए स्थान; नरकाः—नरकलोक; रसौकांसि—यथा अतल; च—भी; सर्वशः—सभी।

हे राजन्, सूर्यदेव तथा सूर्यलोक ब्रह्माण्ड की समस्त दिशाओं को विभाजित करते हैं। सूर्य की उपस्थिति के ही कारण हम समझ पाते हैं कि आकाश, स्वर्गलोक, यह संसार तथा पाताललोक क्या हैं। सूर्य के ही कारण हम जान पाते हैं कि भोग या मोक्ष के स्थान कौन-कौन से हैं और कौन से नरक तथा अतल आदि लोक हैं।

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

देव—देवताओं; तिर्यक्—निम्न पशुओं; मनुष्याणाम्—तथा मनुष्यों का; सरीसृप—कीट तथा सर्प; स-वीरुधाम्—तथा पेड़-पौधे; सर्व-जीव-निकायानाम्—समस्त जीव समूहों का; सूर्यः—सूर्यदेव; आत्मा—प्राण तथा आत्मा; दृक्—नेत्र के; ईश्वरः—भगवान्।

सूर्यलोक से सूर्यदेव द्वारा प्रदान की जा रही उष्मा तथा प्रकाश पर ही समस्त जीवात्माएँ, जिनमें देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, रेंगनेवाले जीव, लताएँ तथा वृक्ष सम्मिलित हैं, निर्भर हैं। सूर्य की ही उपस्थिति में सभी प्राणी देख सकते हैं, इसीलिए वह दृग्-ईश्वर अर्थात् दृष्टि के ईश्वर कहलाते हैं।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कथन है—सूर्य आत्मा आत्मत्वेनोपास्यः। इस ब्रह्माण्ड में सूर्य ही समस्त प्राणियों का जीवन और आत्मा है। इसीलिए वह उपास्य है। हम सूर्यदेव की उपासना गायत्री मंत्र के जप (ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि) द्वारा करते हैं। सूर्य इस ब्रह्माण्ड का उसी प्रकार जीवन और आत्मा है, जिस प्रकार श्रीभगवान् इस समस्त सृष्टि के हैं। ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड हैं जिन के लिए सूर्य देव जीवन और आत्मा

हैं। हमें ज्ञात है कि वैराज, हिरण्यगर्भ ने सूर्य नामक विशाल भौतिक गोलक में प्रवेश किया। अतः तथाकथित वैज्ञानिकों का यह कथन है कि वहाँ कोई नहीं वास करता, असत्य है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि उन्होंने सर्वप्रथम सूर्यदेव को गीता का उपदेश दिया (*इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्*)। अतः सूर्य रिक्त नहीं है। इसमें जीवात्माएँ निवास करती हैं और इसका प्रधान श्रीविग्रह वैराज अथवा विवस्वान् है। पृथ्वी तथा सूर्य में यही अन्तर है कि सूर्य अग्निमय लोक है, किन्तु वहाँ के प्राणी अनुकूल शरीर धारण करके बिना कठिनाई के वहाँ निवास कर सकते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “ब्रह्माण्ड की रचना का विश्लेषण” नामक बीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।